ISSN: 2582-7219

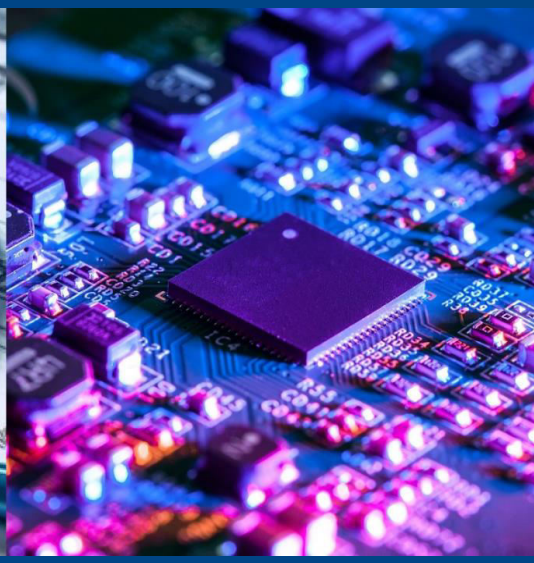

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering and Technology

(A Monthly, Peer Reviewed, Refereed, Scholarly Indexed, Open Access Journal)

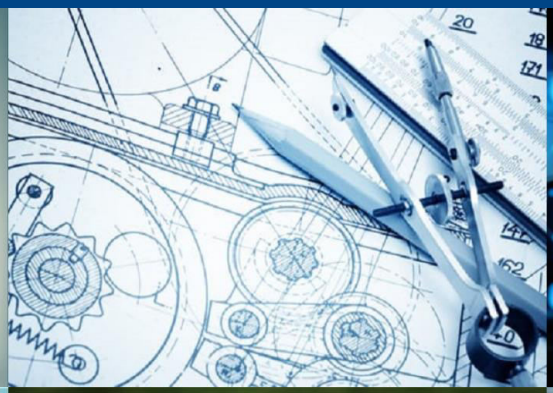

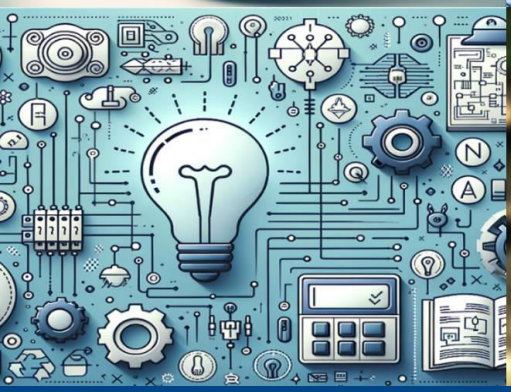

Impact Factor: 8.206 **Volume 8, Issue 5, May 2025**

© 2025 IJMRSET | Volume 8, Issue 5, May 2025| DOI: 10.15680/IJMRSET.2025.0805292

ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 8.206| ESTD Year: 2018|

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering and Technology (IJMRSET)

(A Monthly, Peer Reviewed, Refereed, Scholarly Indexed, Open Access Journal)

भारतीय परिपेक्ष्य में सामाजिक आंदोलन का अवधारणात्मक स्वरूप

Rekha Suthar

NET in Political Science, Fatehpur, Tehsil -Khamnor (Rajsamand) Rajasthan, India

शोध सारांश

आमतौर पर सामाजिक आंदोलनों के बारे में कुछ न कहते हुए भी, यहाँ तक कि वे आंदोलन जिनका प्रत्यक्षतः राजनीतिक चरित्र रहा है जो स्पष्टतः सरकार के विरुद्ध किये गये हैं, उन्हें भी भारतीय राजनीतिक वैज्ञानिकों ने मोटे रूप में अपने शैक्षणिक विषय के क्षेत्र से परे रखा है। भारत में राजनीतिक विज्ञान मुख्यतः कार्यकारी, विधायी, दलों और चुनावों जैसे राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययन तक सीमित रहा है।

सामाजिक आंदोलन सिर्फ तब खड़े होते हैं जब लोग इन असमानताओं और अन्यायों के प्रति सजग होते हैं और उन्हें उखाड़ फेंकने के लिए संघर्ष करते हैं। दरअसल सामाजिक आंदोलन के लिए उपजाऊ जमीन तब उपलब्ध होती है जब प्रतिकूल परिस्थितियों में जी रहे लोगों को वर्तमान समाज व्यवस्था का बेहतर विकल्प दिखने लगता है। तब मौजूदा संस्थाओं के औचित्य पर ही प्रश्न उठ जाता है और इस बदलाव की संभाव्यता दिख जाती है।'

परिचयात्मक

आम जनता की राजनीति, उनकी आकांक्षाओं और मांगों, उनकी समस्याओं को मुखर करना तथा औपचारिक संस्थात्मक ढाँचे से बाहर उनकी मांगों की कार्यप्रणाली को अधिकाशंतः राजनीतिक विज्ञान के विद्वानों द्वारा उपेक्षा की गई है। तथापि, विकास संबंधी नीतियाँ और जनकल्याण संबंधी योजनाएं, उनका कार्यान्वयन, आदि भारतीय राजनीतिक विज्ञान के शिक्षण और शोध कार्यक्रम का हिस्सा हैं। किन्तु, इन नीतियों के निर्माण की प्रक्रियाओं की अपेक्षा उनका ध्यान मुख्यतः योजनाओं के उद्देश्यों और सरकार की भूमिका, और उनके मूल्यांकन पर अधिक केन्द्रित है।

उदाहरणार्थ, भूमि संबंधी नीति को उससे संबंधित उन संघर्षों का बिना विश्लेषण किये पढ़ाया जाता है जिनके कारण राज्य और राजनीतिक दलों को इस नीति को अपनाने के लिये बाध्य होना पड़ा है। श्रीमती इंदिरा गाँधी की 'गरीबी हटाओ' की नीत्ति का विश्लेषण 1960 के दशक के ग्रामीण और नगरीय गरीबों द्वारा किये गये ढेर सारे संघों के संदर्भ में नहीं किया जाता है। बहुधा यह भुला दिया जाता है कि आम जनता की राजनीति को बिना समझे राज्य को पूरी तरह से नहीं समझा जा सकता है। दलित वर्ग के दृष्टिकोणों, विश्वासों, आकांक्षाओं और विचारों का अध्ययन हमें अपनी संकल्पनाओं को परिभाषित और पुनर्परिभाषित करने में हमारी मदद कर सकता है।

दरअसल इस विधा को अपनाने का एक बड़ा कारण भारतीय राजनीति विज्ञान की विरासत है। यद्यपि इस विषय के औपचारिक स्वरूप की विरासत पश्चिमी रही है, तथापि राजनीति की अवधारणा जिस पर प्रमुख बुद्धिजनों द्वारा लिखा गया है, वह सभी स्थानों पर

ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 8.206| ESTD Year: 2018|

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering and Technology (IJMRSET)

(A Monthly, Peer Reviewed, Refereed, Scholarly Indexed, Open Access Journal)

समान है. यह सांस्कृतिक सीमाओं को लांघती है। राजनीति को समझने, विश्लेषण करने और सैद्धांतीकरण करने का बौद्धिक कार्य उतना ही पुराना है जितना की सामूहिक जीवन के गठन की विधा है जब विधि-विधान, नियम और अधिनियम, सत्ता का विभाजन, संसाधनों का वितरण तथा शासन करने हेतु औपचारिक संस्थाओं के अस्तित्व का विकास हुआ था।

गीता और महाभारत राजनीति के शोध-प्रबंध हैं। इन ग्रंथों में शासकों और नागरिक गणों के कर्तव्यों और दायित्वों का विस्तशत विवेचन किया गया है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र भी राजनीतिक संहिता का एक प्रलेखित ग्रंथ है। सुकरात और प्लेटों की कृतियां बहुप्रसिद्ध हैं और इन्हें हमारे देश में राजनीति विज्ञान के विद्यार्थियों को व्यापक रूप से पढ़ाया जाता है। किन्तु, ये सभी ग्रंथ मुख्यतः शासकों की राजनीति और धार्मिक सत्ता तक सीमित है। राजनीति का इस प्रकार का अवधारणीकरण आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में एक शैक्षिक विषय के रूप में राजनीतिक विज्ञान के अध्यापन और शोध के विषय क्षेत्र के निर्माण में एक प्रमुख विमर्श के रूप में छाया हुआ है।

शोध परिणाम :

यदि थोड़ा और पीछे की तरु मुड़ कर देखें तो ब्रिटिश परम्परा के प्रभाव के ग्लस्वरूप भारत में राजनीति विज्ञान राजनीतिक दर्शनशास्त्र, औपचारिक सरकारी संस्थाओं और अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन तक सीमित था। संस्थाओं के काम करने सहित आनुभाविक अध्ययनों का उद्भव 1950 के दशक के बाद में हुआ है जो व्यवहारात्मक सम्प्रदाय, जिसका विकास अमेरिका में हुआ है. से प्रभावित रहा है। विज्ञानवादी आधारित विश्लेषण तथा क्यों के प्रश्न को विस्मृत कर दिया गया। राजनीति वैज्ञानिकों द्वारा अपनाई गई राजनीति की अवधारणा, जो अमेरिकी और ब्रिटिश परम्पराओं से प्रभावित रही है, कही संकीर्ण है। यह अवधारणा एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था तक सीमित है जिसके प्रकार्य नियम बनाना, नियम लागू करना और न्याय करना मात्र है।'

दूसरा, कई राजनीतिक वैज्ञानिकों के लिये, 'राजनीति' का अर्थ समाज में किसे, क्या, कब और कैसे मिलता है। दूसरों के लिये, राजनीति की परिभाषा, मूल्यों का आधिकारिक रूप में आबैटन करना है। अधिकारिता के अर्थ को स्पष्ट करते हुए डेविड ईस्टन बताते हैं कि एक नीति तब स्पष्ट रूप में अधिकारिक होती है जब यह भावना उपस्थित होती है कि इस नीति का निश्चित तौर पर पालन किया जाना चाहिये या पालन किया जाना आवश्यक है न कि नीतियां चाहे वे औपचारिक या प्रभावशाली हो. उन्हें बाध्यकारी स्वीकार किया जाता है। अतः ये परिभाषाएं सरकार और राज्य के प्रकायों या शासक वर्ग अथवा अभिजनों की राजनीति तक राजनीति के अध्ययन को परिभाषित करती हैं। इसलिये कोई आश्चर्य नहीं कि अमेरिका और ब्रिटेन के कुछ विश्वविद्यालयों में राजनीति या राजनीति विज्ञान के विभागों के स्थान पर सरकार या सार्वजनिक कानून और भारत में राजनीति विज्ञान और प्रशासन या लोक प्रशासन के विभाग हैं। ये परिभाषाएँ राजनीति के अध्ययन को सरकार और राज्य के प्रकार्यों तक परिमित करती हैं।

तीसरा, द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की उदारवादी विचारधारा और संरचनात्मक प्राकार्यात्मक उपागम के वर्चस्व के कारण सामाजिक विज्ञान साहित्य में संघर्ष और परिवर्तन की अपेक्षा संतुलन और सामंजस्य पर अधिक जोर दिया गया। राजनीति विज्ञान, यद्यपि मुख्यतः सत्ता और संघर्ष से संबंधित विषय है, हर भी इसमें सामाजिक परिवर्तन हेतु समाजगत संघर्ष जैसे मुद्दों पर शोध नहीं हुआ है। राजनीति वैज्ञानिकों की मुख्यतः रूचि, जनता और शासकों के बीच के संघर्षों की अपेक्षा सत्ता अभिजनों के बीच होने वाले आंतरिक संघषों के अध्ययन में ही अधिक रही है। उनके अनुसार, समाजगत संघर्षों का समाधान सरकार और राजनीतिक संस्थाओं द्वारा

ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 8.206| ESTD Year: 2018|

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering and Technology (IJMRSET)

(A Monthly, Peer Reviewed, Refereed, Scholarly Indexed, Open Access Journal)

किया जाना आवश्यक है। उनका चिंता का क्षेत्र तब शुरू हो जाता है जब संघर्ष सरकार के राजनीतिक घेरे में प्रवेश कर जाता है। उनकी दृष्टि में, संघर्ष के कारणों की अपेक्षा संघर्ष का समाधान अधिक महत्वपूर्ण है।

अधिकांश राजनीतिक विज्ञानी अपनी विचारधारा की दृष्टि से उदारबादी हैं और भारत की स्वतंत्रता के लगभग दो दशकों तक उन्होंने भारत के संविधान को परमपावन माना है। उन्हें अभी तक विश्वास है कि विद्यमान राजनीतिक संस्थाएँ सभी सामाजिक संघर्षों का समाधान कर सकती है। दरअसल इन संघर्षों के समाधान के अगणित संवैधानिक साधन हैं। राजनीति वैज्ञानिकों का तर्क है कि व्यक्तियों को सीधी कार्यवाही करने की अपेक्षा विविध संवैधानिक विधियों की खोज करनी चाहिए। किसी 'खतरनाक स्थिति' में भी जिसमें संघर्ष की स्थिति का समाधान करने में संवैधानिक व्यवस्था अकल हो जाती है, उदारवादी राजनीतिक वैज्ञानिक सामाजिक विवेक के रास्ते को अपनाते हुए, सामाजिक संघर्षों के समाधान के लिये अधिक तर्क संगत और अधिक मानवीय तरीकों की खोज करने में विश्वास करते है। उनका विश्वास है कि लोगों को आज्ञाकारिता की आदत विकसित करनी चाहिये और सता का सम्मान करना चाहिये। प्रजातंत्र तब समाप्त हो जाता है जब सत्ता आम जनता के हाथ में चली जाती है। राजनीतिक वैज्ञानिक यह सलाह देते रहते हैं कि जनता पर अंकुश होना आवश्यक है।

यह सही है कि वे तब हतप्रभ हो जाते हैं जब वे यह देखते हैं कि समाज में फैले असंतोष के साथ तालमेल बिठाने में राजनीतिक संस्थाएं अधिकाधिक रूप में अरूल हो जाती है। उदारवादी और रेडिकल दोनों प्रकार के राजनीतिक वैज्ञानिकों का एक छोटा सा भाग इस विषय की इस संकुचित परिभाषा को स्वीकार नहीं करता है। उन्होंने उदारवादी और मार्क्सवादी ढांचों के परे जाकर सामाजिक रूपान्तरण को अधिक अच्छे ढंग से समझने के लिये सामाजिक आंदोलनों के क्षेत्र की खोजबीन शुरू कर दी है। कहना न होगा कि सामाजिक आंदोलन की कोई ऐसी एक सर्वमान्य परिभाषा नहीं है जो सभी विषयों के विद्धानों को या किसी एक विषय के भी सभी विद्वानों को स्वीकार्य हो।

'प्रजातंत्र', 'जनता', 'लोकप्रिय,' 'समानता', जैसे कई अनेक पदों के साथ 'आंदोलन' पद द्धशब्दद्ध का बहुधा विभिन्न सामाजिक आंदोलनकारियों, राजनीतिक नेताओं और विद्वानों, जिन्होंने 'आंदोलनो' पर लिखा है, विभिन्न रूप में प्रयोग किया है। कुछ विद्वानों ने 'आंदोलन' के पद का प्रयोग 'संगठन' या 'संघ के पदों के अदल-बदल के रूप में किया है। कुछेक व्यक्ति इस पद का प्रयोग किसी ऐतिहासिक प्रवृति या झुकाव के लिये करते हैं। राजनीतिक नेताओं और सामाजिक सुधारकों द्वारा अपने कार्यकलापों को 'आंदोलन' कहना, एक फैशन बन गया है, यद्यपि उनके कार्यकलाप एक दर्जन से भी कम लोगों को लेकर किसी संगठन के निर्माण तक सीमित होते हैं। कुछ व्यक्ति जन मुद्दों की प्रेस विज्ञप्तियां देकर आंदोलनों की शुरूआत करने की बात करते हैं। टी.डी. वेल्डन के स्मरणीय वर्गीकरण का प्रयोग करते हुए 'आंदोलन' का पद कई अन्य शब्दों की भाति एक 'हुर्रा शब्द' बन गया है।"

यहीं एक और महत्वपूर्ण बात जोड़ने की जरूरत है कि 'सामाजिक आंदोलन' का पद यूरोपीय भाषाओं में उन्नीसवी शताब्दों के प्रारंभिक वर्षों में प्रचलन में आया। यह सामाजिक उथल-पुथल का समय था। राजनीतिक नेतागणों और लेखकों जिन्होंने इस पद का प्रयोग किया, वे शोषित वर्गों के उत्थान के प्रति चिन्तित थे और मूल्य व्यवस्था के साथ-साथ संस्थाओं और या सम्पति संबंधों को बदलकर एक नये समाज की रचना करना चाहते थे। उनका वैचारिक दृष्टिकोण उनकी परिभाषा में झलकता है। तथापि, 1950 के प्रारंभ से विभिन्न विद्वानों ने सामाजिक आंदोलनों की अवधारणा की सारगर्भित परिभाषाएं देने का प्रयास किया। पॉल विक्लिनसन ने 'सामाजिक आंदोलन' को निम्नलिखित अवधारणा प्रस्तुत की है-

ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 8.206| ESTD Year: 2018|

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering and Technology (IJMRSET)

(A Monthly, Peer Reviewed, Refereed, Scholarly Indexed, Open Access Journal)

एक सामाजिक आंदोलन किसी भी दिशा में साधन, यहां तक की हिंसात्मक असंवैधानिक साधन द्वारा, क्रांति या 'यूटोपियन (आदर्श लोक) समुदाय स्थापित करने के रूप में, परिवर्तन लाने का एक संकल्पित सामूहिक प्रयास है। अतः सामाजिक आंदोलन स्पष्टतः ऐतिहासिक आंदोलनों, प्रवृत्तियों और झुकावों से भिन्न होते हैं। फिर भी, इस बात का ध्यान दिया जाना महत्वपूर्ण है कि इस प्रकार की प्रवृत्तियां और झुकाव तथा मानवीय व्यवहार के अचेतन या अतार्किक कारकों का प्रभाव सामाजिक आंदोलन का विश्लेषण और स्पष्ट करने में कही महत्वपूर्ण हो सकते है।

एक सामाजिक आंदोलन में न्यूनतम मात्रा में संगठन होना आवश्यक है। यह संगठन एक डीले वाले, अनौपचारिक या आशिक मात्रा से लेकर अत्यधिक संस्थानौक्त और नौकरशाहीकृत आंदोलन या कॉर्पोरेट समूह के रूप में हो सकता है। वास्तव में, यह बताया गया है कि सामाजिक आंदोलन संबंधी साहित्य प्राकृतिक इतिहास, आंदोलन विकास के प्रतिरूपों (मॉडल्स) या सिद्धांतों से संबंधित है। ऐसे मॉडल्स आंदोलन की संरचना में होने वाले परिवर्तनों का आभास देने का प्रयास करते हैं। ये परिवर्तन प्रारंभिक सामाजिक असंतोष और उत्तेजना की स्थिति तथा करिश्माई नेतृत्व के उभार से लेकर सत्ता को हथियाने के क्रांतिकारी आंदोलन का रूप ले सकते हैं।

एक सामाजिक आंदोलन की परिवर्तन और इसके संगठन के उद्देश्यों के प्रति प्रतिबद्धता, चेतन संकल्प शक्ति, आंदोलन के उद्देश्यों और विश्वासों के प्रति आदर्शात्मक प्रतिबद्धता और सदस्यों तथा अनुसरणकर्ताओं की सक्रिय सहभागिता पर आधारित होती है। संकल्पशीलता और आदर्शात्मक प्रतिबद्धता के रूप में सामाजिक आंदोलन का इस प्रकार का विशिष्ट चित्रण इस क्षेत्र के अग्रणी विद्वानों द्वारा लगभग सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया है। उदाहरणार्थ, हेबरले ने इन विश्वास व्यवस्थाओं को ऐसे लोगों की सामूहिक इच्छा की अभिव्यक्ति माना है जो इन्हें स्वीकार करते हैं। वे इस बात पर जोर देते हैं कि यह संकल्पशीलता का तत्व ही है जो विश्वासों को सामाजिक रूप में प्रभावक बनाता है। सामूहिक रूप से काम करने वाली चेतना संकल्पशीलता सामाजिक आंदोलनों में विचारधाराओं के मूर्तरूप को प्रस्तुत करती हैं।'

पॉल विक्लिनसन द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त अवधारणा कोई संक्षिप्त परिभाषा प्रस्तुत करने का दावा नहीं करती। यह अत्यंत विस्तृत है जिसमें संस्थाओं की सीमाओं के अन्तर्गत (जैसे चुनावों में मत देना या स्मरण पत्र देना) संबैधानिक साधनों के द्वारा किसी भी दिशा में परिवर्तन लाने को सम्मिलित किया जाता है। 'न्यूनतम मात्रा में संगठन' का होना एक समस्या है। निश्चित तौर पर यह कहना बड़ा कठिन है कि यह 'न्यूनतम मात्रा' कितनी हो। एक व्यक्ति को इस विषय पर भी आश्चर्य हो सकता है कि सामाजिक आंदोलन की शुरूआत क्या प्रतिबद्ध सदस्यों के द्वारा किसी संगठन की स्थापना के साथ होती है या जैसे जैसे आंदोलन आगे बढ़ता है संगठन समय के साथ धीरे-धीरे विकसित होता जाता है। इस प्रकार की परिभाषा में उपद्रव और विद्रोह को सम्मिलित नहीं किया जा सकता जिनमें शुरूआत में कोई संगठन नहीं होता है। विल्किनसन की कार्यवाहक अवधारणा की ये कठिनाइयां होते हुए भी इसका स्वतः शोध का अपना मूल्य है।

यहां यह कहना उचित होगा कि भारत में सामाजिक आंदोलनों के अध्ययनों में भारतीय संदर्भ में अवधारणा को परिभाषित करने के अभी कोई व्यवस्थित प्रयास नहीं हुए है।

घनश्याम शाह के अनुसार उद्देश्य, विचारधारा, कार्यक्रम, नेतृत्व और संगठन सामाजिक आंदोलनों के महत्वपूर्ण निर्णायक घटक है। ये अन्तनिर्भर हैं जो एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। हर भी रणजीत गुहा की चेतावनी पर ध्यान दिया जाना जरूरी है। उन्होंने कहा है कि यहापि ये निर्णायक तत्व तथाकथित स्वतः सूर्त विद्रोह सहित सभी प्रकार के आंदोलनों या बगावतों में मिलते हैं, तथापि असंरचित

ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 8.206| ESTD Year: 2018|

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering and Technology (IJMRSET)

(A Monthly, Peer Reviewed, Refereed, Scholarly Indexed, Open Access Journal)

से लेकर पूर्णतः संगठित आंदोलनों में इनके रूप भिन्न होते हैं। उन्होंने कुछ इतिहासकारों के इस विचार को चुनौती दी है. जिन्होंने यह मत व्यक्त किया है कि कृषक विद्रोह स्वतः सूर्त होते हैं और इनमें राजनीतिक चेतना और संगठन का अभाव होता है। इस प्रकार के विद्रोहों में न तो नेतृत्व का और न ही उद्देश्य का, न ही एक कार्यक्रम के कुछ रूतत्वों का अभाव होता है. फिर भी ये सभी विशेषताएं बीसवीं शताब्दी के ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक उन्नत आंदोलनों की परिपक्वता और परिष्कृत रूप की तुलना में उनके समकक्ष कहीं नहीं ठहर पाती है।"

विश्लेषण के इस मुकाम पर उन अध्ययनों पर भी ध्यान देना प्रासंगिक जान पड़ता है जिनमें असंस्थागत संवैधानिक या संविधानेत्तर सामूहिक राजनीतिक क्रियाओं का विश्लेषण किया गया है जो सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन हेतु नागरिक और राजनीतिक समाज को प्रभावित करती हैं। सामूहिक क्रियाएं, जो प्रस्थिति में परिवर्तन और सामाजिक गतिशीलता को प्राप्त करने हेतु की गई हैं, उन्हें इनसे अलग रखा गया है। वे क्रियाएं जो कानून रूप में स्वीकृत हैं और जिन्हें सम्पूर्ण समाज को या समाज के किसी हिस्से को किसी समय विशेष पर बांधने वाली क्रियाओं के रूप में व्यापक रूप में स्वीकार किया गया है संस्थागत क्रियाएं होती है। ऐसी क्रियाओं में विभाजन, समर्थन, चुनाव में मत देना, प्रचार करना तथा न्यायालयों में कानूनी लड़ाईयां लड़ने को सम्मिलित किया जाता है।

फिर भी, कभी-कभी इन विधियों के साथ अन्य सामूहिक क्रियाओं को भी सम्मिलित कर उन्हें दांवपेंच के रूप में प्रयोग किया जाता है। ऐसे मामलों में, ऐसी क्रियाओं को घनश्याम शाह सामाजिक आंदोलन का हिस्सा मानते है। कभी-कभी, प्रभु समूहों और राज्य की प्रभुसत्ता, निर्देशों और आदेशों के पालन में बाधा डालने की क्रियाओं को सामाजिक आंदोलन मान लिया जाता है। बाधा डालना निश्चित तौर पर विरोध की ही एक अभिव्यक्ति है। किन्तु जब तक ऐसी क्रियाएं व्यक्तिगत स्तर पर होती हैं और सामूहिक क्रिया का रूप धारण नहीं करतीं, यह आंदोलन नहीं है। डेविड चायले के शब्दों में, यह 'गैर-कानूनी जन विरोध है।"

'गैर-कानूनी' शब्द कई प्रश्नों को जन्म देता है। यह कानून और संविधान की व्याख्या का विषय है। एक विशिष्ट क्रिया (कार्यवाही) को उन व्यक्तियों द्वारा गैर कानूनी ठहराया जा सकता है जो सत्ता में है और जो यथास्थिति का समर्थन करते हैं किन्तु उसी क्रिया (कार्यवाही) को उन व्यक्तियों द्वारा कानून सम्मत बताया जा सकता है जो सामाजिक परिवर्तन लाना चाहते हैं। रजनी कोठारी ने 'प्रत्यक्ष कार्यवाही' को इस प्रकार परिभाषित किया है, "यह संविधानेत्तर राजनीतिक विधि है जो समूह क्रिया का रूप ले लेती है (और) यह सत्तासीन सरकार के विरूद्ध किसी राजनीतिक परिवर्तन लाने के उद्देश्य से की गई होती है।

'संविधानेत्तर' शब्द परिप्रेक्ष्य का विषय है। कोठारी की 'राजनीतिक परिवर्तन' की 1960 की अवधारणा संकीर्ण है जो सरकार के परिवर्तन तक सीमित है। (उसके बाद से उन्होंने इस अवधारणा में परिवर्तन कर दिया है) दरअसल राजनीतिक शक्ति केवल सरकार तक सीमित नहीं होती; यह समाज के कई स्तरों में चंटी होती है। वे सभी व्यक्ति जो 'राजनीतिक परिवर्तन' के लिये प्रयास करते हैं, वे केवल सरकार के विरूद्ध ही संघर्ष नहीं करते हैं। व्यक्तियों की सामाजिक कार्यवाही (क्रिया) कई स्तरों-प्रबल संस्कृति, जाति, वर्ग और विचारधारा के विरूद्ध होती है।

अब एक नजर अ-संस्थानीकृत सामूहिक क्रिया पर भी डालना जरूरी है जिसके कई रूप हो सकते हैं, जैसे विरोध, उपद्रव, हड़ताल, सत्याग्रह, घेराव, दंगे आदि। यदि हम पूर्वोक्त उल्लिखित परिभाषा का अनुसरण करें, तब विरोधों और उपद्रवों को सही रूप में सामाजिक आंदोलन नहीं कहा जा सकता। किन्तु बहुधा, एक सामाजिक आंदोलन एक समयावधि में विकसित होती है। शुरूआत में ऐसे प्रदर्शनों का कोई संगठन और परिवर्तन संबंधी कोई 'विचारधारा' नहीं होती। उदाहरणार्थ, जब गुजरात में एक इंजीनियरिंग

ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 8.206| ESTD Year: 2018|

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering and Technology (IJMRSET)

(A Monthly, Peer Reviewed, Refereed, Scholarly Indexed, Open Access Journal)

कॉलेज के विद्यार्थियों ने भोजनशाला के बिल के प्रति विरोध प्रदर्शित किया, तब यह उनकी एक अपेक्षाकृत स्वतः स्फूर्त क्रिया थी। किन्तु, इसी विरोध प्रदर्शन ने बाद में गुजरात में सन् 1974 में नव निर्माण आंदोलन का रूप ग्रहण कर लिया।

यही नहीं, एक विशिष्ट सामूहिक क्रिया कुछ विद्धानों के लिये मात्र एक विरोध प्रदर्शन हो सकता है, जबकि दूसरों के लिये यह एक आंदोलन होता है। यह विश्लेषण और परिप्रेक्ष्य के स्तर पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ, 1950 के दशक में भाषाई प्रान्तों के निर्माण की मांग को लेकर समाज के एक वर्ग द्वारा की गई सामूहिक क्रिया को कुछ लोगों द्वारा एक 'विरोध प्रदर्शन' माना गया और कुछ के द्वारा एक 'आंदोलन' मात्र था। इन्हीं विद्वानों ने बाद में 'विरोध प्रदर्शन' को 'आंदोलन' माना। घनश्याम शाह विरोध, प्रदर्शन, उपद्रव, हड़ताल आदि को एक 'आंदोलन' या अधिक सुस्पष्ट रूप में समाज के किसी विशिष्ट वर्ग या संस्तर द्वारा किए गए सामाजिक आंदोलन का एक अंग मान कर चलते हैं।

निष्कर्ष : बहुधा, राजनीतिक वैज्ञानिक और समाजशास्त्री 'सामाजिक' और 'राजनीतिक' आंदोलनों के बीच अंतर नहीं करते हैं। समाजशास्त्री मानते हैं कि सामाजिक आंदोलनों में उन आआंदोलनों को भी सम्मिलित किया जाता है जिनका स्पष्ट उद्देश्य राजनीतिक परिवर्तन लाना होता है और यह सही भी है। सामाजिक आंदोलन संबंधी दो ग्रंथ, जिनका सम्पादन एम.एस.ए. राव ने किया है, उनमें ऐसे दो अध्ययनों को सम्मिलित किया गया है (1) नक्सलवादी आंदोलन जिसका उद्देश्य राज्य सत्ता को हथियाना है और (2) उच्च प्रस्थिति प्राप्त करने हेतु पिछड़ी जाति का आंदोलन। रोडल्फ हेबरले कहते हैं कि सभी आंदोलनों के राजनीतिक निहितार्थ होते हैं, चाहे उनके सदस्य राजनीतिक शक्ति प्राप्त करने की कोशिश नहीं करते हैं। राजनीतिक वैज्ञानिक भी 'सामाजिक आंदोलन' शब्द का प्रयोग करने से परहेज नहीं करते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. घनश्याम शाह, भारत में सामाजिक आंदोलन, रावत पब्लिकेशन जयपुर, 2009. पृ. 1
2. उपरोक्त, पृ. 2
3. जी. अल्मीड एण्ड जे, कोलमैन, द पॉलिटिक्स ऑफ डिवालंपिंग एरियाज, प्रिसंटन पूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन, 1960
4. एस.पी. अध्पर (सं.) द पॉलिटिक्स ऑफ मास वापलेंस इन इंडिया, मानकटलाज, बाम्बे, 1966, पृ.33
5. आर. श्रीनिवासन, "डिमोक्रेसी एण्ड द रिवोल्ट ऑफ द मासेज" इन एस.पी. अय्यर (एडीटेड) र पॉलिटिक्स ऑफ मास वामलेंस इन इंडिया, पूर्वोक्त
6. टी.डी. बेलड्न, द वोकैबुलरी अऑफ पॉलिटिक्स, पेनग्यून बुक्स, लंदन, 1955
7. पॉल विल्किनसन, सोशल मूवमेंट, पाल माल, लंदन, 1971. 7. 27
8. प्रताप चन्द्रा, "स्टही ऑफ आइडियोलॉजिकल डिसकोस इन एनसिएण्ट इंडिया सर्व फॉर ए सुटेबल मॉडल", इन एस.सी. मल्लिक (एडीटेड) डिससेन्ट, प्रोटेस्ट एण्ड रिफर्काम इन इंडियन सिविलाइजेशन, इंडियन इंस्टीटयूट ऑफ एडवांस स्टडीज, शिमला, 1977
9. रणजीत गुहा, एप्लमेंट्री आसपेक्ट्स ऑफ पौजेन्ट इनसरजेंसी इन कोलोनियल इंडिया, ऑक्स्फोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1983, पृ.10
10. घनश्याम शाह, पूर्वोक्त पु.

ISSN: 2582-7219 | www.ijmrset.com | Impact Factor: 8.206| ESTD Year: 2018|

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering and Technology (IJMRSET)

(A Monthly, Peer Reviewed, Refereed, Scholarly Indexed, Open Access Journal)

11. डेविड बागले, "द पेडागॉंगी ऑफ डिमोक्रेसी कांवरसिव पब्लिक प्रोटेस्ट इन इंडिया" द अमेरिकन पॉलिटिकल साइंस रिव्यू, वॉल्यूम 56 (3), सितम्बर 1962

12. रजनी कोठारी, "डाइरेक्ट एक्सन ए पैर्टन ऑफ पॉलिटिकल विर्हवियर" क्रेस्ट, वाल्यूम 24, जनवरी-मार्च 1960, पू. 27.

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH

IN SCIENCE, ENGINEERING AND TECHNOLOGY

| Mobile No: +91-6381907438 | Whatsapp: +91-6381907438 | ijmrset@gmail.com |

www.ijmrset.com